गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग की वर्तमान में प्रासंगिकता

अनुपम पटेल

शोधच्छात्र
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ. प्र.), भारत

शोध–सार- मनुष्य के लिए आज का वर्तमान जीवन जितना सुविधाओं से परिपूर्ण है, उतना ही बेचैनी दु:ख और संताप से भरा हुआ है। पश्चिमी देशों ने मनुष्य के विकास का जो वातावरण खड़ा किया है उसने मनुष्य के मन को न समझकर सिर्फ बाहरी पहलू को देखा जिससे मनुष्य का कहीं सन्तुलन खो गया और मनुष्य अधूरा सा रह गया है। आज का मनुष्य जो सुखी जीवन की चाहत लिए खड़ा है, उसका मार्ग उसके कर्म में ही निहित है उसे अपने कर्म को समझना होगा जो कि गीता के कर्मयोग के माध्यम से ही सम्भव है।

कूटशब्द: निष्काम कर्म, कर्मयोग, समत्व, निरपेक्षता।

प्रस्तावना :

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने मनुष्य को बिना फल प्राप्ति के कर्म करने का उपदेश दिया है क्योंकि जब मनुष्य बिना फलप्राप्ति के अपना कार्य कुशलता पूर्वक करता है, तब मनुष्य की सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत हो जाती हैं तथा आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न होती है क्योंकि बिना आध्यात्मिक ऊर्जा के मनुष्य अपने कर्म को श्रेष्ठ एवं उपयोगी नहीं बना सकता। वह मनुष्य इस ऊर्जा से जो कोई भी कार्य करता है वह सिर्फ मानव जाति के लिए ही नहीं शुभ होता वरन् पूरे अस्तित्व के लिए हितकारी होता है। इसलिए मानव जीवन को सुखद बनाने के लिए गीता के कर्मयोग के रहस्य को जानना होगा। **ऋग्वेद** के एक मंत्र में कर्म का प्रतिपादन करते हुए निर्देश किया गया है कि क्रियाशील बनो, प्रभु महिमा का प्रचार करो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ तथा विश्व को आर्य बनाओ।[1]

संसार में कोई भी मनुष्य क्षणमात्र निष्क्रिय नहीं रह सकता, प्रतिक्षण कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। उठना, बैठना, सोना, जागना या अन्य कोई न कोई कर्म करता रहता है कुछ न तो श्वास प्रश्वास लेता ही रहता है प्रकृति के गुण प्रत्येक जीव को कर्म करने के लिए विवश करते रहते हैं। गीता की स्पष्ट घोषणा है कि प्रकृति के गुणों से परतंत्र होकर मनुष्य को कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है।[2] प्रकृति के गुणों से मंत्रमुग्ध पुरुष गुण- कर्म में आसक्त होने के कारण कर्मों का स्वरूप से त्याग नहीं कर सकता। गीता में कहा गया है कि मनुष्य को अवश्यमेव कोई न कोई कर्म करते रहना चाहिए, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कुछ न कुछ कर्म करना अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि कर्म किए बिना शरीर निर्वाह भी सम्भव नहीं नहीं है।[3]

मनुस्मृति में भी वर्णित है कि मनुष्य को वेदोक्त स्वकीय कर्म आलस्य का त्याग करके करना चाहिए क्योंकि शक्ति के अनुसार शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति परमगति को प्राप्त कर लेता है।[4] **ईशावास्योपनिषद** में इसका समर्थन करते हुए कहा गया है कि जीवन पर्यन्त कर्म करते रहना चाहिए -

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥[5]

कर्म के द्वारा हम जगत् के साथ सम्बन्ध बनाते हैं। यदि हम कर्म न करें तो सृष्टि चक्र गतिहीन हो जाएगा अतएव मनुष्य को सदैव कर्म करते रहना चाहिए।

योगसूत्र में अष्टांग योग के अन्तर्गत वर्णित नियम में भी सन्तोष (निष्काम कर्म) के बारे में बतलाया गया है कि सन्तोष (निष्काम कर्म) से निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है- **"सन्तोष: सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा।"**[6] अर्थात् विद्यमान साधनों से अधिक साधनों का संग्रह करने की अनिच्छा सन्तोष है। इसी सन्दर्भ में **महाभारत के शान्तिपर्व एवं वायुपुराण** में कहा गया है कि संसार में जो कामजन्य सुख है और जो महान स्वर्गीय सुख है, ये दोनों (सुख) तृष्णा के नाश के सुख की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते।[7]

विचारणीय यह है कि कर्म शब्द का अभिप्राय क्या है ? गीता में यज्ञ को भी कर्म कहा गया है। यज्ञादि के लिए कृत कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डालता। इसके विपरीत कर्म का फल मनुष्य को भोगना पड़ता है। यज्ञरूप कर्म करने से मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। गीता में कर्म शब्द का आशय क्रमागत प्राप्त वर्णों के निश्चित कर्तव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[8]

गीता में पूजा-पाठ, भजन, व्रत आदि में भी कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। वस्तुत: गीता में कर्म शब्द का प्रयोग सामाजिक कर्तव्यों के अर्थ में हुआ है। संसार में मनुष्य जो भी कर्म करता है उसका कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य रहता है निष्प्रयोजन कोई भी कर्म करने में प्रवृत्त नहीं होता - **प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।** परञ्च गीता का उपदेश है कि हम जो भी कर्म करें वह इस प्रकार से करें कि कर्म हमें बन्धन में न डाल सके क्योंकि सकाम भाव

से किया गया कर्म हमें बन्धन में डालता है। इसकी अपेक्षा जो कर्म निष्काम भाव से किया जाता है वह हमें बन्धन में नहीं डालता, हमें उसके फल का भागी नहीं होना पड़ता है। अत: निष्काम कर्म वह है जो हमारे चित्त को फल से उपरत (विरत) करके सत्य मार्ग पर लगा देता है। **निष्काम का अर्थ लक्ष्यविहीन कदापि नहीं है।** गीता में निष्काम शब्द के दो अर्थ बतलाये गए हैं -

१. आत्मलाभ

२. परमात्मा की प्राप्ति

आत्मलाभ का तात्पर्य ब्रह्मलाभ को प्राप्त होना है यही ब्राह्मीस्थिति कर्मयोग की पराकाष्ठा है, अत्युत्तम स्थिति है। इसे प्राप्त करने वाला पुन: संसार में मुग्ध नहीं होता और अन्त में ब्रह्मनिर्वाण (ब्रह्मरूप) होकर मोक्ष का भागी बन जाता है।[9] ईश्वर प्राप्ति का आशय उनके सामने पहुँचना है। गीता में वर्णित है कि अन्तकाल में जो मेरा स्मरण करते हुए शरीरत्याग करता है, वह मुझे प्राप्त हो जाता है।[10]

गीता में कर्मयोग को मोक्षप्राप्ति का उत्तम साधन कहा गया है। निष्काम से तात्पर्य है कि कर्म करने या न करने में ममता, आसक्ति और कामना का सर्वथा त्याग होना अनिवार्य है। यद्यपि कर्मसन्यास और कर्मयोग दोनों ही मोक्षप्राप्ति के साधन है, किन्तु कर्मसन्यास की अपेक्षा कर्मयोग विशेष है क्योंकि विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि से रहित केवल कर्मसन्यास से कर्मयोग मोक्ष का श्रेष्ठ साधन कहा गया है।[11] वस्तुत: स्वरूप से कर्म का त्याग करना वास्तविक कर्मत्याग नहीं है, अपितु अनासक्त भाव से फल-त्यागपूर्वक किया जाने वाला कर्म ही निष्काम कर्म है और जब कामना, ममता, आसक्ति से रहित होकर कोई कर्म किया जाता है तब उसे निष्काम कर्मयोग कहा जाता है।[12] इतना ही नहीं अपितु ज्ञानयोग को प्राप्त करने की इच्छा वाले मुनि के लिए ज्ञानयोग की प्राप्ति में कर्म को ही कारण बतलाया गया है।[13]योगीजन अन्त:करण की शुद्धि करने के लिए कर्म करते हैं। गीता में वर्णित है कि मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल और उसकी प्राप्ति में उसे कामना नहीं करनी चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्मयोग का वर्णन दूसरे अध्याय के 47वें श्लोक में मिलता है - "तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है फल में नहीं इसलिए तुम कर्मफल की वासना वाला मत बनो, और कर्मों को छोड़ देने का विचार भी मत करो।"

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥[14]

गीता में फल की इच्छा का त्याग करके कर्म करने को 'सन्यास' कहा गया है और सभी कर्मों के फलों के त्याग को 'त्याग'। **मनुस्मृति** में इसे प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग कहा गया है। शरीरधारी मनुष्य के लिए सभी कर्मों का त्याग सम्भव नहीं है, अस्तु ईश्वरार्पण बुद्धि समस्त कर्मों के फलों का त्याग करने वाला ही सच्चा सन्यासी है।[15] इस प्रकार समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा है। इस प्रकार के ज्ञान से समन्वित बुद्धि से जो निष्काम कर्म किया जाता है, वही गीता का निष्काम कर्मयोग है।[16] अस्तु जो मनुष्य सब कुछ ईश्वर में अर्पित कर उनमें शरणापन्न होकर निष्काम भाव से कर्म करता है, तो उसके सब कर्म, अकर्म हो जाते हैं और वह शाश्वत और अविनाशी परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यही सर्वश्रेष्ठ कल्याणप्रद मार्ग है। वर्तमान जीवन में व्यक्ति के कर्म करने का उद्देश्य लाभपूर्ति है। इसे भौतिक लाभपूर्ति कह सकते हैं। जबकि गीता में कर्म करने का उद्देश्य लोककल्याण है।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जी ने **गीतारहस्य** में कहा है कि - "धर्म और व्यावहारिक जीवन अलग नहीं है। सन्यास लेना जीवन का परित्याग करना नहीं है, असली भावना सिर्फ अपने लिए कर्म करने के बजाय देश को अपना बनाएं, मिलजुलकर कर्म करना है, इसके बाद का कदम मानवता की सेवा करना है और यह कदम ईश्वर सेवा है।"[17]

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। अत: कुछ लोगों को यह शंका हो सकती है कि क्या आधुनिक युग में भी गीता की उपादेयता है? सच देखा जाय तो गीता की यथार्थ उपयोगिता आधुनिक युग में ही है। गीता का आधार मानव स्वभाव के मौलिक तत्वों पर है। अत: मानव को सदा गीता से प्रेरणा मिलती रहेगी। आधुनिक युग के अनेक दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिकों ने गीता से प्रेरणा पायी है। असंख्य अन्य लोगों के अनुभव की भाँति ही गाँधी जी का यह अनुभव था कि संकट और निराशा के समय गीता से ही उन्हें समुचित समाधान मिला है। **यंग इण्डिया** में गाँधी जी लिखते हैं - "जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और अकेला पड़ने पर मुझे आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई देती, तो मैं भगवद्गीता के पास लौटकर जाता हूँ। मुझे कोई श्लोक यहाँ-वहाँ दिख जाता है, तो मैं तुरन्त घोर संकटों के बीच भी मुस्कराने लगता हूँ।"[18]

इसी प्रकार अमेरिकन सन्त **'थारो'** महान अमेरिकन लेखक **'राल्फ वाल्डो एमर्सन'** अंग्रेजी विद्वान **'एल्डुअस हक्सले'** आदि अनेक विद्वान ने भी गीता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

लोकमान्य **बालगंगाधर तिलक** ने गीता का महत्व इन शब्दों में व्यक्त किया है - "भक्ति और ज्ञान का मेल करके, इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इनके द्वारा संसार से दु:खित मनुष्य को शान्ति देकर, निष्काम कर्तव्य को आचरण में लगा देने वाला, गीता के समान बालबोध ग्रन्थ संस्कृत की कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में नहीं मिल सकता।"[19] **तिलक** के अनुसार - "गीता एक महान और गम्भीर ग्रन्थ है। निष्काम कर्मयोग इसका दर्शन ज्ञान भक्ति और कर्म में समन्वय प्रदान करती है।"[20] **1914** में गणपति उत्सव के अवसर पर तिलक ने गीता रहस्य में प्रस्तुत गीता के विषय पर 4 भाषण दिए उन्होंने कहा कि - "गीता ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने पर भी कर्म करने की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है।"[21] **स्वामी विवेकानन्द** अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'कर्मयोग'** में कहते हैं कि "मनुष्य जीवन के लिए गीता से अधिक जागरूक प्रहरी शायद ही कोई और हो।"

प्रो. हिरियन्ना ने भी गीता की महत्ता के सन्दर्भ में लिखा है कि "गीता के उपदेशों की आवश्यकता सदा की भाँति अत्यधिक है कालान्तर में भी उसका मूल्य घटा नहीं है और यही उसकी महानता का परिचायक है।"[22]

मधुसूदन सरस्वती की मान्यता है कि गीता कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों को स्वीकार करती है और क्रमश: प्रत्येक के विषय में ६ अध्यायों का प्रतिपादन किया गया है। मधुसूदन सरस्वती का मत समन्वयात्मक है। कर्म, ज्ञान, उपासना तीनों को समान महत्व देना मनोवैज्ञानिक मान्यता के भी अनुरूप है। अत: गीता में ज्ञानयुक्त भक्तिपूर्वक कर्म करने का उपदेश दिया गया है।" **वामन पण्डित** ने अपनी यथार्थदीपिका में उचित ही कहा है कि कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विचार से गीता की व्याख्या करता है।

निष्कर्ष :

गीता के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति जीवन का परम लक्ष्य है। श्रीमद्भगवद्गीता एक सार्वभौम जीवन दर्शन की पुस्तक है। अर्थात् इसकी कुछ ऐसी आधारभूत विशेषताएं हैं जो व्यापक विचार जगत के लिए समानरूप से ग्राह्य है। ये विशेषताएं हैं – सत्य, अहिंसा, त्याग, निरपेक्षता, समत्व, कर्म, ज्ञान और उपासना। ये विशेषताएं वेदों और उपनिषदों से मिली हैं। गीता की इसी सार्वभौम दृष्टि को देखकर **श्रीमती एनी बेसेन्ट** ने कहा था - "गीता का वह संगीत केवल अपनी ही जन्मभूमि तक सीमित न रहा अपितु धरती के भिन्न-भिन्न भाग में प्रवेशकर प्रत्येक देश के प्रत्येक भावुक व्यक्ति के हृदय में उसने वही प्रतिध्वनि जगायी।[23] गीता की प्रशंसा करने में पाश्चात्य विद्वान भी पीछे नहीं हैं। अन्तत: **जर्मन विद्वान हमबोल्ट** ने गीता के प्रति अपनी मान्यता इन शब्दों में प्रकट की है- **"The most beautiful perhaps the only true philosophical song existing in any known tongue."**[24] अर्थात् गीता किसी भी ज्ञान भाषा में सर्वाधिक सुन्दर और सम्भवत: सच्चे अर्थों में दर्शन का गीत है।

जो कर्म सभी के कल्याण के लिए किए जाते हैं, जिसमें स्वयं का कोई लाभ न हो उसे कर्मयोग कहा जाता है। सार रूप में शास्त्र की भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्मयोग साधना भी है और निष्ठा भी। कर्मयोग प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के मध्य का मार्ग है। कर्मयोग सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए होता है जबकि योग स्वयं के लिए होता है। निष्काम कर्मयोग सम्पूर्ण अशुद्धियों को दूर करता है, यही मोक्ष का द्वार है। आधुनिक युग में कर्मयोग साधना की उपयोगिता नि:संदेह महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ:

1. ऋग्वेद – ६/६३/५.
2. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर – ३/५.
3 श्रीमद्भगवद्गीता – ३/८.
4 वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रित:।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम्॥ — (४/१४०). मनुस्मृति, (संपा.) राजीव शास्त्री, व्याख्याकार, डा. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८१.
5 यजुर्वेद, डा. रेखा व्यास, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, संस्करण 2015. (यजुर्वेद – ४०/२).
6 पातञ्जल योगसूत्र (व्यासभाष्य), सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी २०१९. (पातञ्जल योगसूत्र - २/३२).
7 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखं।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हत: षोडशीं कलाम्॥ — (वायुपुराण –९३/१०१) ; (शान्ति पर्व – १७४/४६), महाभारत (पञ्चम खण्ड), महर्षि वेदव्यास प्रणीत, (अनु.) पं. रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', संवत् 2072.
8 ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविध: कर्मसंग्रह:॥ — (श्रीमद्भगवद्गीता – १८/४१).
9 एष ब्राह्मीस्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ — (तदेव –२/७).
10 अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय:॥ — (तदेव – ८/५).
11 सन्यास: कर्मयोगश्च नि:श्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥ — (तदेव – ५/२).
12 तदेव – १८/९.
13 तदेव – ६/३.
14 श्रीमद्भगवद्गीता – २/४७.
15 तदेव – १८/१८.
16 योगस्थ कुरु कर्माणि संङ्ग त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ — (तदेव – २/४८).
17 गीता रहस्य, बालगंगाधर तिलक, प्रकाशक रामचन्द्र बलवन्त तिलक, पुणे, 1933.
18 महात्मा गाँधी के विचार, (संपा.) आर. के. प्रभु तथा यू. आर. राव, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया,1994, पृष्ठ – १०२.
19 गीता रहस्य, पृष्ठ – ९.

20 तिलक, गीता रहस्य, (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ – ५८८.
21 केसरी में तिलक के लेख, पृष्ठ – ५१५-५२७.
22 भारतीय दर्शन की रूपरेखा, राधाकृष्ण, 'भारतीय दर्शन भाग-1', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1969, पृष्ठ – ९२३.
23 बंदिष्टे डी. डी. , 'दार्शनिक निबन्ध', मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1995, पृष्ठ – २३३.
24 तदेव , पृष्ठ –२३३.